इकाई 4 भारत में मुद्रास्फीति

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 भारत में मुद्रा-स्फीति की माप

4.3 भारत में कीमत प्रवृत्तियाँ

- 4.3.1 1951-66 की अवस्था
- 4.3.2 1966-90 की अवस्था
- 4.3.3 1990 के आगे की अवस्था

4.4 भारत में मुद्रा-स्फीति के कारण

- 4.4.1 माँग पक्ष में कारक
- 4.4.2 पूर्ति पक्ष में कारक

4.5 भारत में मुद्रा-स्फीति के परिणाम

4.6 उपचार

- 4.6.1 मुद्रा-नीति
- 4.6.2 राजकोषीय नीति
- 4.6.3 उत्पादन और वितरण नीति
- 4.6.4 प्रशासित कीमत नीति
- 4.6.5 वाणिज्य नीति
- 4.6.6 आय नीति

4.7 नई थोक कीमत सूचकांक (WPI) श्रेणियों पर एक नोट

4.8 सारांश

4.9 शब्दावली

4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा संकेत

4.0 उद्देश्य

इस इकाई में आपको 1951 में प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरुआत के समय से भारत में सामान्य कीमत स्तर की प्रवृत्तियों से अवगत कराया गया है। इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- भारतीय अर्थव्यवस्था में मुद्रा-स्फीति की दिशा की व्याख्या कर सकें;
- भारतीय अर्थव्यवस्था में मुद्रा-स्फीति की प्रवृत्तियों के कारणों को पहचान सकें;
- विकास कीमतों पर मुद्रा-स्फीति के परिणामों को समझ सकें; तथा
- ऐसी नीति बना सकें जो मुद्रा-स्फीति को नियंत्रण में रख सकें।

4.1 प्रस्तावना

भारत में आर्थिक आयोजना का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है कीमत स्थिरता के पर्यावरण में आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा देना। कीमत स्थिरता से अभिप्राय होता है सामान्य कीमत स्तर में अनियमित और अनियोजित

उतार-चढ़ाव, स्फीतिकारी या अवस्फीतिकारी, का न होना। आमतौर पर माना जाता है कि आर्थिक संवृद्धि के लिए संयत मुद्रा-स्फीति का होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त किसी भी मात्रा में योजनाबद्ध मुद्रा-स्फीति चिंता का विषय नहीं भी हो सकती क्योंकि योजना के अंतर्गत आवश्यक सुधारक उपायों की भी व्यवस्था होती है।

परंतु मुद्रा-स्फीति की दर जब योजनाबद्ध स्तर से ऊपर हो जाती है तब उसके भयंकर परिणाम होते हैं। यह योजना के समस्त ढाँचे को बिगाड़ सकती है। इसीलिए मुद्रा-स्फीति को संकट का सूचक माना जाता है। पिछले लगभग चार दशकों से भारत इस स्थिति से गुजर रहा है। इसलिए आवश्यक हो जाता है कि रोग का निदान किया जाए और उसके उपचार के लिए उपयुक्त उपाय किए जाएँ।

4.2 भारत में मुद्रा-स्फीति की माप

भारत में मुद्रा-स्फीति को थोक कीमत सूचकांक (WPI) की सहायता से मापा जाता है। भारत सरकार WPI का संकलन साप्ताहिक आधार पर करती है। WPI 447 वस्तुओं का संयुक्त सूचकांक है। इन वस्तुओं को तीन वर्गों में बाँटा गया है - (i) प्राथमिक वस्तुएँ, (ii) ईंधन वर्ग और (iii) विनिर्मित वस्तुएँ। प्राथमिक वस्तुओं की भारिता 32.3 प्रतिशत है, जबकि ईंधन वर्ग और विनिर्मित वस्तुओं की भारिता क्रमश: 10.7 प्रतिशत और 57.0 प्रतिशत है। इस समय WPI का आकलन 1993-94 की आधार वर्ष कीमतों के अनुसार किया जाता है।

4.3 भारत में कीमत प्रवृत्तियाँ

भारत के प्रत्येक योजना प्रलेखों में यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया गया है कि योजना की अवधि में मुद्रा-स्फीति का दबाव न हो और समाज के गरीब तबके के लोगों के जीवन स्तर को सुरक्षा प्रदान किया जाए। फिर भी हालाँकि आर्थिक आयोजना का मुख्य उद्देश्य कीमत स्थिरता को बनाए रखना रहा है फिर भी जैसा कि हम नीचे के आँकड़े में देखेंगे इस उद्देश्य की पूर्ति कभी भी नहीं हो पाई है।

1951-99 की समस्त अवधि को तीन अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है।

i) 1951-66,

ii) 1966-90 और

iii) 1990 के आगे।

4.3.1 1951-66 की अवस्था

इस अवधि में यद्यपि मुद्रा-स्फीति संयत रूप में था फिर भी 1950 के दशक के बीच में भारी निवेश कार्यक्रमों के शुरू होने के साथ-साथ मुद्रा-स्फीति की दर बढ़ने लगी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना की अवधि में WPI गिर कर 22 प्रतिशत हो गया था लेकिन दूसरी पंचवर्षीय योजना की 5 वर्ष की अवधि में यह लगभग 30 प्रतिशत बढ़ गया और तीसरी पंचवर्षीय योजना की अवधि में यह और 35 प्रतिशत बढ़ गया।

यह कहा जा सकता है कि इस अवधि में WPI की बढ़ने की प्रवृत्ति के कारण विकास कार्यक्रमों का स्फीतिकारी वित्तीयन तथा उत्पादन में गिरावट (विशेषत: कृषि उत्पादों का) थे। 1960 के दशक में बाहरी आक्रमण के प्रति रक्षा पर किए गए खर्चों के कारण भी स्फीतिकारी दबाव बढ़े।

4.3.2 1966-90 की अवस्था

इस अवधि में सभी योजनाओं के काल में कीमतों में उतार-चढ़ाव होता रहा और कीमतों में अत्यंत परिवर्तनशीलता रही। 1966-90 की अवधि में कीमतों में उतार-चढ़ाव की सात उप-अवस्थाएँ देखी जा सकती हैं।

मुद्रा-स्फीति की दरें 1966-67 में (13.9%) और 1967-68 में (11.6%) बहुत ही ऊँची रही। उसके बाद 1971-72 तक ये दरें गिरती गईं या इनमें बहुत ही कम वृद्धि हुई।

1972-73 से 1974-75 तक सामान्य कीमत स्तर में अचानक ही बहुत तेज वृद्धि (25.2%) हुई। उसके बाद के चार वर्षों (1975-76 से 1978-79 तक) में अपेक्षाकृत कीमत स्थिरता रही। वर्ष 1979-80 और 1980-81 में कीमतें पुन: क्रमश: 17.1% और 18.2% की दर से बढ़ गई। 1981-82 में गिर कर 9.3% हो गई, हालांकि यह अभी ऊँची थी।

इसके बाद 1982-83 से 1986-87 तक कीमतों में वृद्धि संयत रूप से रही तथा उसके बाद के तीन वर्षों (1987-88 से 1989-90 तक) में कीमतों में वृद्धि पुन: बहुत तेज दर से हुई।

कीमतों में वृद्धि संबंधी उपर्युक्त समीक्षा में हम देखते हैं कि भारत में मुद्रास्फीति का स्वरूप अत्यंत ही दिलचस्प रहा है। मुद्रा-स्फीति की ऊँची दर की अवधि के बाद कीमत स्थिरता की अवधि आती है। ऐसा होना भारत की आर्थिक संरचना का तर्कसम्मत परिणाम है। ऐसा इसलिए होता है कि सरकार उन आर्थिक गड़बड़ियों के संबंध में उपाय करती हैं जो समष्टि आर्थिक और क्षेत्रकों संबंधी असंतुलन ला सकते है।

4.3.3 1990 के आगे की अवस्था

सुधार के बाद की अवधि में मुद्रा-स्फीति बनी रही है। 1990-91 समष्टि आर्थिक अव्यवस्था का वर्ष था तथा इस वर्ष में WPI में 12.1% की वृद्धि हुई। अगले राजकोषीय वर्ष में दो चरणों में रुपये का अवमूल्यन हुआ। इसमें WPI में 13.6% की वृद्धि हुई। वर्ष 1992-93 में खाद्यान्नों के उत्पादन में 6.9% की वृद्धि हुई तथा समस्त कृषि उत्पादन में 3.9% की वृद्धि हुई और मुद्रा-स्फीति दर घटकर 6% हो गई। इसके अगले दो वर्षों में मुद्रा-स्फीति की औसत दर 10.6% थी।

WPI के तीन भाग हैं– प्राथमिक वस्तुएँ (32.29% की भारिता), ईंधन वर्ग (10.66% की भारिता) और विनिर्मित वस्तुएँ (57.4% की भारिता)। प्राथमिक वस्तुएँ, जिनसे अभिप्राय अप्रक्रमित खाद्य फसलों, रेशेदार वस्तुओं और पशुधन से होता है, प्राकृतिक शक्तियों पर निर्भर रहती हैं। ईंधन वर्ग के अंतर्गत आते हैं खनिज तेल, बिजली और कोयला। इस वर्ग में मुद्रा-स्फीति सदा ही ऊँची रहती है। पिछले दस वर्षों में से 6 वर्षों में ईंधन वर्ग में मुद्रा-स्फीति की दर औसतन 10% से अधिक रही है। लेकिन पिछले दो वर्षों में इस में कमी हुई है। वर्ष 1998-99 में मुद्रा-स्फीति दर औसतन 4.3% थी तथा 1999-2000 वर्ष में (फरवरी तक) यह 8% के लगभग थी।

मुद्रा-स्फीति की दर (WPI द्वारा मापित) को नीचा रखने में सबसे बड़ा योगदान 'विनिर्मित पदार्थों' के वर्ग का रहा है, जिसमें 1998-99 के 4.6% की तुलना में 1999-2000 में कीमतें केवल 0.4% बढ़ी। इस प्रकार इस वर्ष में मुद्रा-स्फीति की दर बहुत अधिक गिरी। मुद्रा-स्फीति के घटकों में विनिर्मित वस्तुओं का बहुत अधिक महत्त्व है। इसके दो कारण हैं– भारिता का अधिक होना तथा इस वर्ग द्वारा अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक परिवर्तनों का शिकार होना। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस वर्ग की वस्तुएँ प्राथमिक वस्तु वर्ग की तुलना में नीतियों से अधिक प्रभावित होती हैं। विनिर्मित उत्पादों में मुद्रा-स्फीति की दर क्यों नीची होती है? इस संबंध में सामान्य तौर पर निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होता। इस वर्ग में मुद्रा-स्फीति की दर यदि नीची है तो इसके कुछ निश्चित कारक हैं, जैसे कि आगतों की कीमतें कम होना, माँग को बढ़ाने के संबंध में उत्पादक के प्रयास या प्रतिस्पर्धी दबाव।

अंतिम कारक बहुत अधिक महत्त्व का है, क्यों मुद्रा-स्फीति के व्यवहार के संबंध में इसका दीर्घकालीन आशय होता है। संकेतों से पता चलता है कि विनिर्माण-मुद्रा-स्फीति को नीचा रखने में देश के अंदर के और आयातों के प्रतिस्पर्धी दबावों का बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। यदि यह सही है तो निकट भविष्य में विनिर्माण मुद्रा-स्फीति में अत्यंत शीघ्रता से वृद्धि की संभावना नहीं है।

कुल मिलाकर भारत का विनिर्माण क्षेत्रक देश के अंदर के तथा बाहर के प्रतिस्पर्धी दबावों का अधिक शिकार रहा है। WPI में योगदान करने वाली लगभग 35% घटकें अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता का शिकार हो सकती हैं और यदि हम सीमेंट, टिकाऊ उपभोक्ता वस्तुओं और मोटरगाड़ी जैसे क्षेत्रकों में देश के अंदर की प्रतियोगिता को शामिल कर लें तो विनिर्माण क्षेत्रक के बहुत बड़े भाग की कीमत-निर्धारण शक्ति प्रतिस्पर्धी दबावों से प्रभावित होगी। भविष्य में मुद्रा-स्फीति की दिशा क्या होगी? प्राथमिक वस्तुओं के संबंध में पहले से सही

रूप में अनुमान लगाना कठिन है क्योंकि यह नर्म अप्रत्याशित होता है। पिछले दस वर्षों में से चार वर्षों में इस वर्ग में मुद्रा-स्फीति 10% से अधिक हो गई तथा पिछले केवल दो वर्षों में ही यह 5% से कम पर स्थिर हो गई। इसलिए यदि हम संभाव्यता के नियम के अनुसार जाते हैं तो इस वर्ग में मुद्रा-स्फीति के बढ़ने की संभावना है।

ईंधन वर्ग की वस्तुओं की कीमतों में लगातार वृद्धि होने की प्रवृत्ति होती है, अत: मुद्रा-स्फीति में वृद्धि लगभग 8-10% रहेगी। जहाँ तक विनिर्माण क्षेत्रक का संबंध है, उसका एक बहुत बड़ा भाग विश्वव्यापी चक्र के साथ जुड़ा है। अत: माँग के पुन: प्रवर्तन से विनिर्माण मुद्रा-स्फीति के बढ़ने की स्थितियाँ पैदा हो सकती है, परंतु यह भी संभव है कि 2001 में यह 4-5% के स्तर पर रहेगी, जैसा कि यह पिछले चार वर्षों में थी। कुल मिलाकर हम देखते हैं कि अगले वर्ष में WPI 5-6% रहेगी। भारत के लिए इस दर को नीची कहा जा सकता है।

1990 के दशक के मध्य के वर्षों में मुद्रा-स्फीति की दर में गिरावट आई। यद्यपि WPI ऊँचा तो होता गया, फिर भी इसमें वृद्धि की दर संयत रही। यह 1995-96 में 7.7%, 1996-97 में 6.4%, 1997-98 में 4.8% तथा 1998-99 में 6.9% की दर से बढ़ी।

उपर्युक्त विवरण में हम देखते हैं कि 1950 के दशक के मध्य में भारत ने कीमतों में वृद्धि के युग में प्रवेश किया। उसके बाद कीमतों में लगातार वृद्धि होती रही। इस संबंध में अंतर यह रहा है कि विभिन्न समयों में वृद्धि की दरें अलग-अलग रही हैं। 1950 और 1960 के दशकों में तो वृद्धि की दरें अलग-अलग रही हैं। 1950 और 1960 के दशकों में तो मुद्रा-स्फीति संयत रूप में होती थी तथा स्थिर कीमतों और कीमतों में वृद्धि की अवस्थाएँ कभी-कभी एक साथ मिल जाती थी। मुद्रा-स्फीति की दर 1970 के दशक के मध्य में बढ़ने लगी तथा 1980 के दशक में और 1990 के दशक के शुरू के पाँच वर्षों में इसमें बहुत तेजी से वृद्धि हुई। 1995 के बाद के वर्षों में कीमत रेखा में उतार-चढ़ाव कम रहा है।

बोध प्रश्न 1

1) आर्थिक संवृद्धि के लिए मुद्रा-स्फीति अच्छी होती है या बुरी?

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में मुद्रा-स्फीति की माप कैसे की जाती है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) 1990 के दशक में भारत में मुद्रा-स्फीति की दिशा के संबंध में विवरण दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

4.4 भारत में मुद्रा-स्फीति के कारण

भारत में मुद्रा-स्फीति माँगजन्य (demand pull) और लागतजन्य (cost push) इन दोनों ही कारकों का मिश्रण रही है।

4.4.1 माँग पक्ष में कारक

माँग पक्ष की ओर से जो प्रमुख कारक भारत में मुद्रा-स्फीति के कारण रहे हैं वे निम्नलिखित है :

1) **सरकार के घाटे का स्फीतिकारी वित्तीयन :** प्रथम पंचवर्षीय योजना के शुरू होने के समय से ही सरकार के बढ़ते हुए खर्च के फलस्वरूप राजकोषीय घाटे हुए। इस घाटे के बहुत बड़े भाग की पूर्ति देश के बाहर से और देश के अंदर से सुलभ और सहज ऋणों को लेकर की जा सकी। लेकिन इसके साथ ही साथ इस कार्य के लिए नई करेन्सी नोटों को भी छापना होता है। कभी-कभी ऐसी करेन्सी नोटों में वृद्धि की मात्रा वस्तुओं और सेवाओं में वृद्धि के अनुपात से अधिक हो जाती है, जिससे वस्तुओं और सेवाओं की माँग बढ़ जाती है और इन सबके फलस्वरूप सामान्य कीमत स्तर बढ़ जाता है।

2) **बैंक उधार की बहुत अधिक पूर्ति :** संवृद्धि की प्रक्रिया में उत्पादन क्षेत्रक की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उधार लेने की आवश्यकता पड़ती है। उसी प्रकार विश्वव्यापीकरण के होने ओर वित्तीय प्रणाली से मध्यस्थों के हटाने के फलस्वरूप बैंकिंग प्रणाली के बाहर नये बैंकिंग प्रपत्र बड़ी तेजी से आते जा रहे हैं। इन सबके फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में मुद्रा का प्रसार हो रहा है।

3) **गैर-ऋण विदेशी पूँजी का बहुत बड़ी मात्रा में अंत:प्रवाह :** विदेशों से कारक आय, प्रत्यक्ष और पोर्टफोलियों निवेश के रूप में बहुत बड़ी मात्रा में विदेशी पूँजी के अंत:प्रवाह के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था में नकदी की उपलब्धता में वृद्धि हो जाती है। इसके फलस्वरूप वस्तुओं और सेवाओं की नई माँगें होने लगती हैं।

4) **काला धन :** इस शब्द से आशय उस धन से होता है जिसे कर अपवयन द्वारा प्राप्त किया जाता है। काले धन का उपयोग प्राय: अनुत्पादक कार्यों के वित्तीयन के लिए किया जाता है, जैसे कि स्थावर संपत्ति का क्रय-विक्रय, सोना की तस्करी, जमाखोरी, भोग-विलास का जीवन व्यतीत करना आदि। इन कार्यों से संसाधनों का प्रवाह उत्पादक कार्यों से अनुत्पादक कार्यों की ओर होता है और इन सबके फलस्वरूप वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति अधिकतम मात्रा में नहीं हो पाती है।

4.4.2 पूर्ति पक्ष में कारक

पूर्ति पक्ष की ओर से प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं :

1) **प्रशासित कीमतों में वृद्धि :** हमारी अर्थव्यवस्था में बाजार का बहुत बड़ा भाग सरकार के कार्यों द्वारा प्रभावित और नियंत्रित होता है। यह बात कृषि क्षेत्रक और उद्योग क्षेत्रक इन दोनों ही के लिए सही है। कृषि क्षेत्रक में सरकार न्यूनतम गारन्टित समर्थन कीमत, वसूली कीमत आदि उपायों द्वारा बाजार शक्तियों का विनियमन करती है। उसी प्रकार उद्योगों के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण मध्यवर्ती वस्तुओं और कच्चे माल की कीमतें सरकार निश्चित करती है। भारत में मुद्रा-स्फीति का प्रमुख कारण निर्देशित कीमतों में समय-समय पर वृद्धि होना है।

2) **आधारिक संरचना सुविधाओं का अस्तव्यस्त होना :** इसमें कोई संदेह नहीं कि अर्थव्यवस्था को आधारिक संरचना संबंधी सहायता देने के संबंध में काफी प्रयास किए गए हैं और इस संबंध में प्रगति भी हुई है, फिर भी माँग और पूर्ति के बीच अंतर बना हुआ है, जिससे वस्तुओं के समस्त उत्पादन और पूर्ति पर दुष्प्रभाव पड़ता है। इन सबके फलस्वरूप बेरोजगारी बढ़ती है तथा वास्तविक उत्पादन की दर घट जाती है।

3) **अनिवार्य वस्तुओं की आयात कीमतों में वृद्धि :** अर्थव्यवस्था के विश्वव्यापीकरण के बढ़ने के साथ-साथ देश के अंदर की कीमतों को अंतरराष्ट्रीय कीमतों से अलग नहीं रखा जा सकता, विशेषत: ऐसी स्थिति में जब कि आयात कीमतें बढ़ती जा रही है। इन सबका देश के अंदर की लागत और कीमत ढाँचे पर स्फीतिकारी प्रभाव पड़ता है।

4) **दोषपूर्ण और अप्रभावी प्रबंध :** अपने लाभ की मात्रा को बढ़ाने के प्रयास में निजी उद्यमकर्ता जमाखोरी, सट्टा बाजार की कार्यवाहियों, बेनामी लेनदेनों, चोर बाजारी आदि का आश्रय लेते हैं। इन सब कार्यों के फलस्वरूप बाजार शक्तियों के मुक्त रूप से कार्य करने में बाधा पड़ती है। और इनके फलस्वरूप कृत्रिम दुर्लभता की स्थिति पैदा होती है। जिसका लाभ केवल निजी उद्यमकर्ता ही उठाते हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) की कार्यवाहियाँ अकुशल और भ्रष्ट प्रशासन से ग्रस्त हैं।

बोध प्रश्न 2

1) भारत में मुद्रा-स्फीति माँग और पूर्ति की शक्तियों का संयुक्त परिणाम है। इस कथन पर टिप्पणी लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) माँग पक्ष के उन तीन कारकों के संबंध के संबंध में विवेचन कीजिए जिनके कारण भारत में मुद्रा-स्फीति होती है।

.....

.....

.....

.....

.....

3) पूर्ति पक्ष के उन तीन कारकों के संबंध में विवेचन कीजिए जिनके फलस्वरूप भारत में मुद्रा-स्फीति होती है।

.....

.....

.....

.....

.....

4.5 भारत में मुद्रा-स्फीति के परिणाम

भारत में मुद्रा-स्फीति के प्रमुख परिणाम निम्नलिखित हो सकते हैं :

एक, नियत आय वर्ग के लोगों के सामान्य उपभोग मापदंड पर बढ़ती हुई कीमतों के प्रभाव प्राय: गंभीर होते हैं। इस वर्ग के अंतर्गत भूमिहीन कृषकों की एक बहुत बड़ी संख्या भी आ जाती है जिनकी मजदूरी नकदी में दी जाती है। धनी वर्ग के लोग तो विभिन्न प्रकार की संपत्तियों में लेनदेन करके तथा मुद्रा-स्फीति के साथ कीमतों में वृद्धि होने वाली संपत्तियों को खरीद कर मुद्रा-स्फीति के प्रभाव से अपना बचाव कर सकते हैं।

दो, मुद्रा-स्फीति से स्थानाश्रित वस्तुओं (positional goods) की माँग बढ़ती है। इस प्रवृत्ति का प्रभाव गरीब वर्ग के लोगों के उपभोग की वस्तुओं पर पड़ता है क्योंकि नगरों और गाँवों के मध्यम वर्ग के लोग अपने उपलोग के योग्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए अधिक दबाव डाल सकते हैं। भारत जैसे संसाधनों की कमी वाले देश में कीमतों में वृद्धि की स्थिति में गरीबों की हालत और भी खराब हो सकती है।

तीन, भारत जैसे देश में जहाँ जनता की बहुत बड़ी संख्या निवल ऋणी है, कीमतों में क्रमिक वृद्धि से उनके ऋण का भार कम हो जाना चाहिए। लेकिन इस समय उत्पादन और विपरण का जो ढाँचा है उसमें बिचौलियों और महाजनों का बीच में आ जाने के कारण कृषकों और कारीगरों को उच्च कीमतों के लाभ का एक अत्यंत छोटा भाग ही प्राप्त हो पाता है।

चार, उच्च कीमतों के फलस्वरूप उत्पादन को प्रेरकों की मात्रा संरचनात्मक और संस्थागत बाध्यताओं द्वारा सीमित हो जाती है। ये बाध्यताएँ हैं पूँजी, उद्यम और कौशल की कमी तथा भारतीय कृपि का स्वावलंबी स्वरूप।

पाँच, सापेक्ष कीमत और मजदूरी ढाँचे को बिगाड़ने के फलस्वरूप हुई मुद्रा-स्फीति के कारण कर अधिकारियों के लिए अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रकों के लोगों की मुद्रा आय का पता लगाना कठिन हो गया है तथा इससे समांतर अर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने और उसका प्रसार करने में सहायता मिली है।

छः, सरकार द्वारा गैर-योजना खर्चों में वृद्धि भी मुद्रा-स्फीति के कारण हो सकती है। इससे सरकार नई नोटों को छापने को वाध्य होती है जिससे घाटा का वित्तीयन होता है। इससे मुद्रा-स्फीति और भी अधिक बढ़ती है।

सात, मुद्रा-स्फीति के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था की लागत बढ़ जाती है जिससे विश्व बाजार में भारत की प्रतिस्पर्धी क्षमता घट जाती है।

आठ, मुद्रा-स्फीति के फलस्वरूप निर्यातों में कमी होती है तथा आयातों में वृद्धि होती है। कुल मिलाकर देखने पर हम पाते हैं कि निर्यात-प्रतियोगित्व (export competitiveness) का घटना, स्फीतिकारी लाभ को प्राप्त करने में व्यस्त व्यवसायी वर्ग द्वारा अनुत्पादक कार्यों को करना, आय और संपत्ति के वितरण के संबंध में बढ़ते हुए अंतर के फलस्वरूप श्रमिक वर्ग का अधिकाधिक निराश होना, ये सभी प्रवृत्तियाँ इस बात की घोतक हैं कि दीर्घकालीन मुद्रा-स्फीति भारत जैसी विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था को दुर्बल बनाती जा रही है।

बोध प्रश्न 3

1) व्याख्या करके बताइए कि समाज के गरीब वर्ग को मुद्रा-स्फीति किस प्रकार से प्रभावित करती है?

.....

.....

.....

.....

.....

2) व्याख्या करके बताइए कि निर्यात बाजारों में हमारे प्रतियोगित्व पर मुद्रा-स्फीति का विपरीत प्रभाव किस प्रकार से पड़ता है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) स्वनियोजित व्यक्तियों (self-employed persons) पर मुद्रा-स्फीति का क्या प्रभाव होता है?

.....

.....

.....

4.6 उपचार

जैसा कि हमने ऊपर देखा है मुद्रा-स्फीति के अनेक कारण हैं। अत: इस संबंध में उपचार के लिए व्यापक तौर पर उपाय करने होंगे।

4.6.1 मुद्रा-नीति

विकासोन्मुख अर्थव्यवस्था में मुद्रा नीति का मुख्य कार्य है एक ओर तो संवृद्धि क्षेत्रकों के ऋण की आवश्यकताओं को पूरा करना और दूसरी ओर सट्टेबाजी के कार्यों और जमाखोरी जैसे अनुत्पादक कार्यकलापों में उपयोग की जाने वाली मुद्रा की पूर्ति पर रोक लगाना। भारत में मुद्रानीति इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर बनाई गई है, अत: इसे नियंत्रित मुद्रा प्रसार की नीति कहा जाता है।

इस नीति को प्रभावी बनाने के लिए रिजर्व बैंक अनेक प्रकार के मात्रात्मक और गुणात्मक नियंत्रणों को काम में लाता रहा है। परंतु अर्थव्यवस्था की आज की स्थितियों में मुद्रा नीति की अनेक सीमाओं के अधीन रह कर कार्य करना होता है।

गैर-बैंकिंग संस्थाएँ और एजेन्सियाँ जो कुल ऋण देती हैं उनका अनुपात बहुत अधिक है तथा बैंकों और इन संस्थाओं के बीच के संबंध का विकास भलीभांति नहीं हो पाया है। इस प्रकार कुल लेनदेनों के लिए आवश्यक मुद्रा के संबंध में रिजर्व बैंक द्वारा दिए जाने वाले प्रोत्साहनों का सीमित प्रभाव पड़ता है।

ऋणों पर नियंत्रण जब भी लगाए जाते हैं तब अर्थव्यवस्था के प्राथमिक क्षेत्रकों पर उनका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि मुद्रा-स्फीति को वश में रखने के लिए केवल मुद्रानीति पर ही निर्भर नहीं रहा जा सकता।

4.6.2 राजकोषीय नीति

राजकोषीय घाटे को कम करने की आवश्यकता है। हाल के अनुभव बताते हैं कि विकास व्ययों में कमी करके राजकोषीय घाटे को कम करने से सुस्ती (recession) आ सकती है और आय में कमी हो सकती है। वास्तविकता तो यह है कि औद्योगिक कार्यकलापों को पुन: करने के लिए, विशेषत: आधारिक संरचनाओं पर, किए जाने वाले व्यय की मात्रा में बहुत अधिक वृद्धि करने की आवश्यकता है। इसके विपरीत गैर-विकास व्ययों में कमी करने की बहुत कम गुंजाइश है। इस क्षेत्र में यदि कुछ बचत की भी जाती है तो उससे अधिक व्यय रक्षा कार्यों पर हो जाएगा।

ऐसी स्थिति में आवश्यक हो जाता है कि निम्नलिखित दोनों या कम से कम एक कार्य किए जाएँ :

क) सरकार अपने खर्च को बहुत कम करे। ऐसा वह सरकारी विभागों का पुनर्गठन करके, कार्यकुशलता में सुधार लाकर, सहायिकी (subsidies) को घटा कर तथा अन्य निष्फल व्ययों को कम करके कर सकती है।

ख) सार्वजनिक उद्यम प्रणाली तथा रेलवे, डाक, तार आदि सार्वजनिक क्षेत्रक के अन्य घटकों पर किए गए निवेश से सरकार अधिक आय प्राप्त करे।

4.6.3 उत्पादन और वितरण नीति

किसी योजना का लक्ष्य यदि अर्थव्यवस्था के कृषि और उद्योग क्षेत्रकों में उत्पादन और उत्पादिता में वृद्धि करना नहीं है तो वह सफल नहीं हो सकती।

इसके साथ ही साथ सोच-समझकर बनाई गई वितरण नीति की आवश्यकता होती है। भारत में अब तक दो प्रकार की वितरण प्रणाली का आश्रय लिया गया है। ये हैं, समस्त देश में वस्तुओं के वितरण के संबंध में निजी उद्यमकर्ताओं पर पूर्णत: निर्भरता और खाद्यान्नों के थोक विक्रय का पूर्णत: राष्ट्रीकरण। हमारा अनुभव यह रहा है कि ये दोनों ही प्रणालियाँ खतरे से भरी हुई हैं। इस संबंध में हमारा सुझाव यह है कि वितरण प्रणाली को तो निजी उद्यम के हाथ में दे देना चाहिए, लेकिन सरकारी एजेन्सियों द्वारा इनकी निगरानी और पर्यवेक्षण होने चाहिए जिससे भ्रष्टाचार को रोका जा सके।

4.6.4 प्रशासित कीमत नीति

प्रशासित कीमत नीति के संबंध में ध्यान देने की बात यह है कि राजकोषीय स्थायित्व और कीमत-स्थिरता के उद्देश्य सदा ही एक जैसे नहीं होते। सार्वजनिक क्षेत्रक के उपक्रम (PSUs) यदि प्रशासित कीमतों को बढ़ा देते हैं तो सरकार उन्हें बजट सहायता देने के दायित्व से मुक्त हो जाती है, परंतु इसके फलस्वरूप पेट्रोलियम उत्पादों जैसे प्रमुख आगतों की कीमतों में वृद्धि का सामान्य कीमत स्थिति पर सोपानिक प्रभाव पड़ता है। अत: सरकार की कीमत नीति ऐसी होनी चाहिए कि प्रशासित कीमतों में बार-बार वृद्धि न करनी पड़े।

4.6.5 वाणिज्य नीति

हाल के वर्षों में वाणिज्य नीति की निर्यात-उन्मुखता को और किसी भी रूप में विदेशी मुद्रा के अंत:प्रवाह को प्रोत्साहन देने को महत्त्वपूर्ण माना जाने लगा है। निर्यातों को इस प्रकार से महत्त्व प्रदान करने का कारण है भुगतान संतुलन को बनाए रखने की चिंता। आज के आर्थिक परिवेश में ऐसा ही होना उचित है।

लेकिन विदेशी मुद्रा अर्जन करने की धुन में हम कीमत स्थिति को नियंत्रण से बाहर नहीं जाने दे सकते। विदेशी मुद्रा रिजर्व के वर्तमान स्तर को देखते हुए हमें कम से कम अनिवार्य वस्तुओं की देश के अंदर पूर्ति को उस स्तर पर बनाए रखना होगा जिससे स्फीतिकारी प्रत्याशाओं को बल न मिले। इसके लिए दो बातें आवश्यक होंगी : (क) वस्तुओं का उदारतापूर्वक आयात तथा (ख) देश के अंदर जिन वस्तुओं की पूर्ति कम है उनके निर्यात पर नियंत्रण।

4.6.6 आय नीति

कीमत स्थिरता को बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि विभिन्न कीमतों के बीच, विभिन्न आयों के बीच तथा कीमत ढाँचा और आय ढाँचा के बीच उचित संबंध बनाया जाए। उचित कीमत-आय ढाँचा के होने की स्थिति में यदि किसी कारक की आय बढ़ती है तो उसे उत्पादिता में वृद्धि के अनुकूल होनी चाहिए। यह भी आवश्यक है कि मुद्रा पूर्ति में वृद्धि समाज की यथार्थ आवश्यकताओं से अधिक न हो, जैसे कि उत्पादन में वृद्धि के फलस्वरूप लेनदेनों की मात्रा में वृद्धि तथा वर्तमान लेनदेनों के मुद्रीकरण में वृद्धि।

बोध प्रश्न 4

1) कीमत स्थिरता को बनाए रखने के लिए आप किस प्रकार की मुद्रा-नीति की सिफारिश करेंगे?

.....

.....

.....

.....

2) कीमत स्थिरता के लिए राजकोषीय नीति के घटकों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3) कीमत स्थिरता को बनाए रखने के लिए आप किस प्रकार की प्रशासित कीमत नीति की सिफारिश करेंगे?

.....

.....

.....

.....

4.7 नई थोक कीमत सूचकांक (WPI) श्रेणियों पर एक नोट

आशा की जाती है कि 1993-94 को आधार वर्ष मानकर यदि थोक विक्रय कीमतों के सूचकांकों की संशोधित श्रेणी को प्रचलन में लाया जाता है तो मुद्रा-स्फीति की वास्तविक तस्वीर सामने आएगी। नये आधार वर्ष का चुनाव सर्वविदित कसौटियों के आधार पर किया गया है। इसके वांछित विशेषताएँ ये हैं : (i) उत्पादन और व्यापार के स्तर के लिए तथा कीमतों में उतार-चढ़ाव के लिए सामान्य वर्ष, (ii) ऐसा वर्ष जिसके लिए विश्वसनीय कीमत और अन्य आँकड़े उपलब्ध हों तथा (iii) यथासंभव हाल का वर्ष।

यह नजर में रखते हुए कि 1981-82 (पुरानी श्रेणी का आधार वर्ष) से अर्थव्यवस्था के ढाँचे में हुए परिवर्तनों का पर्याप्त रूप से प्रतिनिधित्व हो सके, अर्थव्यवस्था में लेनदेन की जाने वाली सभी महत्त्वपूर्ण मदों को संशोधित सूचकांक में शामिल कर लिया गया है। 1993-94 आधार वर्ष वाली नई श्रेणी के करेमोडिटी बास्केट में 435 मदों को लिया गया है। इस प्रकार नई श्रेणी में ली गई मदों की संख्या 1981-82 श्रेणी के 447 मदों से कम है। फिर भी नई श्रेणी की रचन्त को निम्नलिखित प्रकार से तर्कसंगत बना दिया गया है : नई और महत्त्वपूर्ण मदों को शामिल करके, महत्वहीन मदों को निकाल कर, कम महत्व की मदों को उन्हीं जैसी मदों के साथ मिलाकर और कुछ मदों को अलग-अलग करके।

संशोधित श्रेणी में 136 बिल्कुल नई मदों को शामिल कर लिया गया है। इसके अतिरिक्त 1981-82 श्रेणी में दी गई अनेक किस्मों और ग्रेडों को नई श्रेणी में वस्तुओं का दर्जा दे दिया गया है। पुरानी श्रेणी की कुछ मदों को एक साथ मिला दिया गया है क्योंकि उनकी विशेषताएँ एक समान हैं। 1981-82 श्रेणी की 150 मदों को निकाल दिया गया है क्योंकि अर्थव्यवस्था के उत्पादन में उनका विशेष महत्व नहीं है। केवल 68% मदें/वस्तुएँ ही पुरानी और नई दोनों श्रेणियों में शामिल हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण मदें जिन्हें WPI कोमोडिटिज बास्केट में पहली बार शामिल किया गया है वे हैं रेल इंजनों के लिए बिजली, प्युरिफाइड टेरेपथलिक एसिड (PTA), इंजेक्शन मोल्डेड प्लास्टिक की मदें, आक्सीजन गैस सिलिंडर, रेलवे स्लीपर (सीमेंट), थिनर एम एस इमगौट्स, कोल्ड रौल्ड शीट्स, एल पी जी सिलिंडर, जेलफिल्ड टेलीफोन केबल, कलर टी वी सेट, कम्प्यूटर और कम्प्यूटर बेस्ड सिस्टम। जिन वस्तुओं को श्रेणी से निकाल दिया गया है उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं : अभ्रक, आयातित पेट्रोलियम क्रूड, खादी हैंडलूम कपड़ा, ब्रॉड गेज ओपेन वैगन और कलाई घड़ियाँ।

संशोधित श्रेणी में 'प्राथमिक वस्तुओं' का भार बहुत ही घट गया है, जबकि विनिर्मित वस्तुओं का भार बहुत अधिक बढ़ गया है। यह स्थिति इसलिए हुई है कि कृषि क्षेत्रक में अपेक्षाकृत धीमी गति से वृद्धि हुई है, विशेषत: प्रमुख 'प्राथमिक वस्तुओं' के वर्ग में खाद्य पदार्थों और गैर-खाद्य पदार्थों में। प्राथमिक वस्तु वर्ग का भार 1981-82 के 32.29% से घटकर नई श्रेणी में 22.02% हो गया। दूसरी 'ईंधन, बिजली, लाइट एंड लुब्रिकेंट' वर्ग का भार 10.66% से बढ़कर 14.23% हो गया तथा 'विनिर्मित वस्तु वर्ग' का भार 57.04% से बढ़कर 63.75% हो गया। ये नये भार उन संरचनात्मक परिवर्तनों के अनुरूप हैं जो 1981-82 श्रेणी अपनाने के समय से अर्थव्यवस्था में हुए हैं।

संशोधित श्रेणी के सामान्य थोक विक्रय कीमत और 1981-82 श्रेणी को 1993-94 आधार पर रखने के बाद तुलनात्मक विश्लेषण करने पर पता चलता है कि संशोधित श्रेणी की शुरुआत उच्च स्तर पर होती है और उसके बाद दोनों श्रेणियाँ लगभग एक दूसरे के समान हो जाती हैं। वास्तविकता तो यह है कि 1994-95 के बाद संशोधित श्रेणी में परिवर्तन की दर पहले की श्रेणी से कुछ कम है क्योंकि संशोधित श्रेणी का वस्तु संघटन (commodity compositions) अच्छी किस्म की वस्तुओं को दर्शाता है, तथा कभी-कभी इसकी निरपेक्ष कीमत कुछ ऊँची होती है।

प्रो. एस. आर. हशीम की अध्यक्षता में वर्किंग ग्रुप ने नई WPI श्रेणी के संघटन को अंतिम रूप दिया। इस ग्रुप का कहना है कि विश्व अर्थव्यवस्था के साथ भारत की अर्थव्यवस्था के अधिक एकीकरण और उनमें हुए परिवर्तनों के कारण थोक विक्रय कीमत (WPI) सूचकांक में बार-बार संशोधन की आवश्यकता है। इस ग्रुप ने यह भी सुझाव दिया है कि इस सूचकांक में सेवाओं को भी शामिल करने का प्रयास होना चाहिए क्योंकि अर्थव्यवस्था में हुई आय का लगभग 50% सेवाओं से ही आता है। इसने सुझाव दिया है कि शुरू-शुरू में सीमित मात्रा में कुछ महत्त्व सेवा उद्योगों को शामिल किया जाए, जिन के संबंध में आँकड़े उपलब्ध हैं और अंतत: वस्तुओं और सेवाओं को एक साथ मिलाकर एक नई WPI श्रेणी तैयार की जाए।

स्रोत : इकनॉमिक डायरी, एस डी नाइक, न्यूजीनेस लाइन, अप्रैल 25, 2000

4.8 सारांश

भारत में आर्थिक आयोजना का मुख्य उद्देश्य रहा है कीमत स्थिरता के पर्यावरण में आर्थिक संवृद्धि को बढ़ावा देना। लेकिन इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पाई है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद कीमत स्तर बढ़ने लगा और उसके बाद इसमें लगातार वृद्धि हो रही है। लेकिन अंतर केवल इस बात का रहा है कि विभिन्न चरणों में किस दर से कीमत में वृद्धि हुई है। 1950 और 1960 के दशकों में मुद्रा-स्फीति संयत रूप में हुआ करती थी तथा कीमत स्थिरता की स्थिति के बाद कीमतों में वृद्धि के चरण आते थे। लेकिन 1970 के दशक के बीच के समय से मुद्रा-स्फीति की दर बढ़ने लगी तथा 1980 के दशक एवं 1990 के दशक के प्रारंभिक वर्षों में मुद्रा-स्फीति की दर बहुत बढ़ गई। भारत में मुद्रा-स्फीति माँगजन्य और लागतजन्य कारकों का मिश्रण रही है। इसलिए कुछ ऐसे उपाय करने होंगे जिससे देश में कीमत स्थिरता की स्थिति को पुन: लाया जा सके।

4.9 शब्दावली

मुद्रा-स्फीति (Inflation) : सामान्य कीमत स्तर में लगातार वृद्धि होना।

लागतजन्य-मुद्रा-स्फीति (Cost Push Inflation) : लागतों में स्वतंत्र वृद्धि के फलस्वरूप सामान्य कीमत स्तर में लगातार वृद्धि।

माँगजन्य मुद्रा-स्फीति (Demand-pull Inflation) : समस्त माँग में लगातार वृद्धि का होना जिसके फलस्वरूप सामान्य कीमत स्तर में लगातार वृद्धि होती है।

वास्तविक आय (Real Income) : 'स्थिर कीमतों' में मापित कुल उत्पादन का मूल्य अर्थात् मुद्रा-स्फीति की सामान्य दर को घटा दिया जाता है, जिससे संसाधनों पर वास्तविक अनुशासन हो सके।

प्रशासित कीमत (Administration Prices) : बाजार शक्तियों द्वारा निर्धारित न होकर कुछ व्यक्तियों या किसी एजेन्सी द्वारा जानबूझ कर निर्धारित की गई कीमतें। प्रशासित कीमतें प्राय: उस स्थिति में संभव होती हैं जब किसी वस्तु का विक्रय किसी सार्वजनिक प्राधिकरण द्वारा होता है।

4.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Dhingra I.C. (2000) : The Indian Economy: Environment and Policy (Chapter-10), Sultan Chand & Sons, New Delhi,

Government of India (2000) : Economic Survey: 1999-2000 (Annual), New Delhi

Jindal, Ajay (2000) : A caged tiger called inflation, the Economic Times, April 18.

Naik, S.D. (2000) : New WPI Series: A more realistic picture of inflation, Business Line, April 25.

Planning Commission (1999) : Ninth Five-Year Plan 1997-2002, New Delhi

Reserve Bank of India (2000) : Report on Currency and Finance, 1999 Mumbai

4.11 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) भाग 4.1 देखिए।

2) भाग 4.2 देखिए।

3) उप-भाग 4.3.3 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 4.4 देखिए।

2) उप-भाग 4.4.1 देखिए।

3) उप-भाग 4.4.2 देखिए।

बोध प्रश्न 3

1) उप-भाग 4.5 देखिए।

2) उप-भाग 4.5 देखिए।

3) उप-भाग 4.5 देखिए।

बोध प्रश्न 4

1) उप-भाग 4.6.1 देखिए।

2) उप-भाग 4.6.2 देखिए।

3) उप-भाग 4.6.4 देखिए।